शोध सार

उपसंहार

हिन्दी साहित्य दृष्टि से देखा जाए तो आत्मकथा बहुत ही जटिल, गौण, परन्तु एक अर्थपूर्ण विधा है इसके माध्यम से मनुष्य अपना आत्मीय चरित्र सार्वजनिक करता है। 1796 ई. में पहली बार 'आत्मकथा' नामक शब्द का प्रयोग जर्मनी के रहने वाले 'हर्डर' नामक व्यक्ति ने किया। आरम्भिक समय में आत्मकथा और जीवनी को पर्यायवाची माना जाता था। इसलिए इसे 'आत्मजीवनी' कहा जाता है। 19वीं शब्तादी के आरम्भिक दशकों से ही आत्मकथा को जीवनी से अलग करके स्वतंत्र विधा के रूप में जाना जाने लगा। जीवन की कलात्मक अभिव्यक्ति आत्मकथा होती है। आत्मकथा एक ऐसा दस्तावेज है जिसके माध्यम से मनुष्य अपने जीवन की घटनाओं और अनुभवों को आत्मविश्लेषण करके लिपिबद्ध करता है। आत्मकथा लिखने का उद्देश्य अतीत में स्वयं के साथ घटने वाली घटनाओं की स्मृतियों का विवरण सत्य व यथार्थ की दृष्टि से आत्मनिरीक्षण होता है। साहित्य व आत्मकथा के अन्तःसम्बन्धों को भी हमें इसकी पारिभाषिक विवेचना से पहले जानना आवश्यक है। जीवन ही साहित्य का आधार है। दोनों एक-दूसरे के पूरक होते है। साहित्य वह संबंध सार्वजनिक जीवन, राजनैतिक जीवन, सामाजिक जीवन, आर्थिक जीवन के साथ-साथ व्यक्तिगत जीवन से भी होता है। जिस प्रकार साहित्य का सम्बन्ध व्यक्तिगत जीवन से होता है उसी प्रकार

व्यक्तिगत जीवन में भी साहित्य के तत्त्व विद्यमान होते हैं। इसके परिणाम स्वरूप आत्मकथा ने साहित्य में अपना स्थान लोकप्रिय विधाओं में दर्ज करवा लिया है। वर्तमान समय में आत्मकथा गद्‌य साहित्य की एक तेजी से लोकप्रिय होती विधा है। इसके पीछे कारण यह है कि मनुष्य आज स्वयं के जीवन में झांकने की बजाए दूसरे के जीवन में ताक-झांक ज्यादा रखता है। आत्मकथा के माध्यम से आत्मकथाकार अपने जीवन के सफर में घटने वाली घटनाओं के आधार पर अपने निजी पहलूओं का वर्णन करता है। आत्मकथा में सबसे ज्यादा ध्यान सत्य पर होता है अर्थात् आत्मकथा का आधार सत्य है। आत्मकथा की विधा सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त सभी भाषाओं में मिलती है। अर्थात् जो व्यक्ति दुनिया के किसी भी कोने में रहता हो अगर वह आत्मकथा लिखना चाहता है तो वह अपनी मातृभाषा या अपने क्षेत्र की मानक भाषा में लिखेगा चाहे वह कोई भी भाषा हो। आत्मकथा में लेखक अपने प्रति तटस्थ भाव से अपने विचारों की अभिव्यक्ति करता है। इसका केन्द्र स्वयं आत्मकथाकार होता है। वह अपने अनछुए पहलुओं को पाठक के रखने का सामर्थ्य करता है। आत्मकथा कोई मनोरंजन परक साहित्य नहीं है अस्तु यह पाठक में व्यक्ति को समझने व परिस्थितियों से निपटने की एक समझ व कला को भी विकसित करती है। देखा जाए तो आत्मकथा विधा का आरंभ ही दूसरे के विषय में जानने व स्वयं के विषय में कहने के लिए ही हुआ है । आत्मचरित्र में लेखक अपनी भावनाओं को प्रस्तुत करता है। इससे पाठक को ऐसा लगता है जैसे बिना मिले ही उसने लेखक से मुलाकाल कर ली हो। अर्थात् पाठक भावनाओं के माध्यम से लेखक से जुड़

जाता है। आत्मकथा के द्वारा मनुष्य अपनी अस्मिता की स्थापना करना चाहता है। इससे उसे समाज में एक उचित स्थान भी मिलता है। मनुष्य अपनी कलात्मक अभिव्यक्ति भी आत्मकथा के द्वारा व्यक्त करता है। आत्मकथा के माध्यम से लेखक अपनी समस्याओं को प्रस्तुत कर उनको याद करने के उपाय जो स्वयं ने अपनाए समाज के सामने प्रस्तुत करता है।

भारतीय संस्कृति आदिकाल से लेकर आजतक जीवित है। यह आज तक विद्यमान है क्योंकि इसने विदेशी आक्रमणों एवं अत्याचारों के भंयकर प्रहार सहकर भी प्रबल विरोधों के बावजूद सहस्त्राब्दियों में सतत उत्पीड़न के बीच अन्तर्मन की अपनी विशेषताओं को जीतकर उन्हें आत्मसात तक कर लिया है। अतः इतिहास गवाह है कि वैदिक काल से प्रकाशित भारतीय संस्कृति का दीप, जिसकी ज्योति, काल गति से मंद भले ही पड़ गयी हो, समय-समय पर जन्म लेने वाले संतों की परम्परा द्वारा प्रप्रज्ज्वलित किया जाता रहा है। और उसने अपनी प्रभा से देश-विदेश के लोगों की न केवल चमत्कृत करती है अपितु उन्हें अपनी प्रकाश धारा से चकाचौंध भी किया है। भारतीय संस्कृति समन्वयादी संस्कृति माना जाता है। यहाँ अनेक संस्कृतियाँ आई, किन्तु हलके से कम्पन के पश्चात् हमारी संस्कृति ने उन सबको अपने अस्तित्व में ही विलिन कर लिया। आर्य और आर्येतर संस्कृतियों के संगम से उत्पन्न संस्कृति से भारत की बुनियादी संस्कृति के स्वरूपक का निर्धारण हुआ है जो आज भी शाश्वत है।

भारतीय विचारकों ने ‘संस्कृति’ शब्द का विवेचन शुद्धि, परिष्कार, संस्कार, दर्शन, चिंतन, कला एवं आध्यात्मिक मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में किया है। किसी भी देश के जातीय जीवन की परम उपलब्धि उस देश की संस्कृति होती है। जिसका अनुसरण करके वहां के लोग सुख, शान्ति एवं संतुष्टि का अनुभव करते है। सच में संस्कृति जीवन की उस प्रक्रिया का नाम है जो सदैव बदलती रहती है और सभ्यता के अन्तराल के बाद सदैव वर्तमान रहती है। जीवन के साथ-साथ उसका उत्थान एवं पतन होता रहता है क्योंकि संस्कृति में केन्द्र में मनुष्य होता है जो उसका निर्माता और विनाशक दोनों की ही भूमिका निभाती है। किसी भी समाज के लोग जिन वस्तुओं का उपयोग करते हैं कैसे व्यवहार करते हैं, यह सब उसकी संस्कृति के अंतर्गत ही आता है। संस्कृति देश, काल, जाति, धर्म और सम्प्रदाय तक सीमित न होकर मनुष्य के सर्वांगीण विकास की सारणी है। यह जीवन का संस्कार है। वह केवल अतीत की विरासत नहीं बल्कि वर्तमान को संजोकर भविष्य की सार्थक सम्भावना है। यह किसी देश का ऐसा दर्पण होती है जो उसीक विशिष्टताओं के साथ-साथ उसकी दुर्बलताओं के अनुरूप भविष्य की संभावनाओं की यथार्थता को प्रतिबिम्बित करती है। संस्कृति से तात्पर्य संस्कार सम्पन्नता शुद्धि अथवा व्यक्ति की सुधरी हुई स्थिति से है। जिस व्यक्ति का आचरण व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों रूप से शुद्ध हो उसी को संस्कृत कहा जा सकता है। संस्कार सम्पन्नता ही संस्कृति है, ये संस्कार शारीरिक, मानसिक, नैतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, किसी भी प्रकार के हो सकते हैं। आधुनिक युग में इन संस्कारों का स्वरूप बदल रहा है

क्योंकि माता-पिता और समाज की परम्परागत मान्यताओं में परिवर्तन आ रहे हैं मूलतः वहीं संस्कार देने वाले माने जाते हैं। संस्कारों में होने वाले बदलाव के कारण संस्कृति के रूप एवं स्वरूप में भी परिवर्तन आना स्वाभाविक है। संस्कृति और संस्कार को अलग नहीं किया जा सकता है।

भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता समन्वय की भावना है। जिस प्रकार कोई नदी अपनी उपनदियों को अपने भीतर समाहित करके आगे चलती है। ठीक उसी तरह भारतीय संस्कृति भी अन्य संस्कृतियों को अपने में समाहित करके चलती है। समन्वय भारतीय संस्कृति का मूल आधार है।

भारतीय संस्कृति में आश्रम-व्यवस्था के साथ अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष जैसे चार पुरूषार्थों का विशेष स्थान रहा है। इन्हीं पुरूषार्थों ने भारतीय संस्कृति में आध्यात्मिकता के साथ भौतिकता का एक अद्वितीय समन्वय कर दिया। हमारी संस्कृति में इहलोक और परलौक दोनों पहलुओं से धर्म को सम्बन्ध किया गया था। धर्म उन सिद्धान्तों तत्त्वों और जीवन प्रणाली को कहा जाता है।

भारत को भौगोलिक दृष्टि से विविधताओं को देश माना जाता है फिर भी सांस्कृतिक रूप में एक इकाई के रूप में इसका अस्तित्व आदिकाल से बना हुआ है। भारतीय परिवेश में विभिन्न धर्म तथा विभिन्न धर्मों के असंख्य जातिगत व्यवस्थाएं है। इन भिन्न-भिन्न धर्मो के जनजातियों के भाषाओं में, रहन-सहन, खान-पान, रूढ़ि परम्पराओं के अंतर होते हुए भी भारतीय संस्कृति ने इन सभी

को एकता के सूत्र में बांधने का प्रयाय किया है। हमारी संस्कृति ने ही कश्मीर से कन्याकुमारी तक फैले हुए विस्तृत भू-भाग को एकसूत्र में पिरोने का कार्य किया है।

एक ही देश के अलग-अलग क्षेत्रों में रहने वाले लोगों का खानपान बिल्कुल भिन्न हो जाता है। भारत जैसे विशाल देश में तो केवल भौगोलिक वातावरण में विविधता नहीं अपितु जाति, धर्म, खान-पान पहनावे पर भी देखने को मिलता है। इन क्षेत्रों में पाश्चात्य संस्कृति ने अपना प्रभाव काफी डाला है, लेकिन फिर भी भारतीय खानपान की संस्कृति आज भी लोकप्रिय बनी हुई है। हमारी अपनी खुद एक परम्परा रही है जो इन परिवर्तनों के दौर में भी अपने अस्तित्व को बचाए रखने में सफल हुई है।

भारतीय समाज में परम्परा का महत्त्व अत्यधिक है। पारम्परिक पद्धति से विवाह, व्रत, त्यौहार स्त्रियों के जीवन के अविभाज्य अंग होते हैं। भारतीय समाज में विवाह को तो एक महत्त्वपूर्ण संस्था माना जाता है जो मनुष्य की कामभावना, वंश-वृद्धि एवं सामाजिक जीवन को सुव्यवस्थित संस्कार के साथ-साथ धार्मिक संस्कार भी प्रदान करती है।

भारतीय संस्कृति में धार्मिक त्यौहारों और उत्सवों का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है| अन्य देशों की तुलना में भारतीय संस्कृति में अधिक उत्सव प्रियता है। यह उत्सव धर्मिता परिवार और समाज को एक सूत्र में पिरोती है।

व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है। उसकी शारीरिक, मानसिक तथा आर्थिक जरूरतें समाज में ही पूर्ण होती है जिसके लिए वह समाज के अन्य व्यक्तियों के साथ संबंध स्थापित करता है। वास्तव में व्यक्ति में समाज के अन्य सदस्यों से संबध स्थापित करने की प्रवृति स्वाभाविक होती है, जिसे वह सामाजिक अन्तःक्रिया के फलस्वरूप विकसित करता है। समाज व्यक्ति के संबंधों के आधार पर लगातार विकसित और परिमार्जित होता रहता है। समाज जनरीतियों, रूढ़ियो एवं संस्थाओं, आदतों, भावनाओं एवं आदर्शों की सम्पूर्ण सामाजिक पद्धति है, जो उत्तराधिकार के रूप में हस्तांतरित होती है। व्यक्ति का सर्वांगीण विकास अर्थात् शारीरिक मानसिक, भौतिक, सामाजिक, नैतिक, सांस्कृतिक विकास समाज के द्वारा हो पूर्ण होता है। समाज एक व्यक्ति से नहीं बनता इसलिए समाज के लिए एक से अधिक व्यक्तियों की सत्ता की आवश्यकता होती है। व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है और उसमें अपने साथियों के साथ सामान्य रूप से जीवन जीने की क्षमता पाई जाती है। व्यक्ति के ये सम्बन्ध पारिवारिक, राजनीतिक, व्यक्तिगत, आर्थिक मैत्रीपूर्ण, द्वेषयुक्त सहयोग से पूर्ण, सहयोग रहित बहुत प्रकार से हो सकते हैं| इन्हीं विभिन्न संबंधों के कारण समाज का निर्माण होता है और इन्हीं सब कारणों से समाज के स्वरूप में भी परिवर्तन आ जाता है। समाज में रहते हुए व्यक्ति को अपने दायित्वों, कर्तव्यों का बोध होता है। समाज में रहते हुए ही व्यक्ति में सामाजिक चेतना विकसित होती है। व्यक्ति के विकास में ही समाज का विकास

निहित होता है। अतः व्यक्ति एवं समाज का विकास आपस में संबंधित है। दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं।

वर्तमान युग वैज्ञानिक और प्रगतिशील युग है। इस युग में जिस प्रकार भारतीय गांवों की उन्नति की अनेक योजनाएं बन रही हैं, उनके विकास हेतु आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक रूप से जो सामूहिक प्रयास किये जा रहे हैं वे इस बात के जीवन्त साक्ष्य है कि भारतीय जीवन का एकमात्र आधार गांव है। जहां तक ग्राम शब्द की व्युत्पत्ति का संबंध है| पाणिनी ने ग्राम की एक स्वतंत्र धातु ही स्वीकार किया है। जिसका अर्थ होता है आमंत्रण इस दृष्टिकोण से देखा जाए तो जीवन के आमंत्रण का मौलिक अधिकार ग्रामों को ही है। ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ, और संन्यास तीनों आश्रम गृहस्थ आश्रम पर ही आधारित है और गृहस्थ तो ग्रामों में ही रहता है। इस तरह बहुत संभव है कि इसी धातु के अर्थ पर 'ग्राम' शब्द प्रचलित है। अशिक्षा ही समाज में सभी बुराइयां की जड़ है। शिक्षा ही वह साधन है जो व्यक्ति के विचारों में परिवर्तित करके उसके जीवन का दिशा निर्देश करती है। शिक्षा के द्वारा ही स्त्री सीमित और संकुचित दायरे से निकलकर अपने व्यक्तित्व का विकास कर पा रही है। शिक्षा के द्वारा ही वह अपने अधिकारों को पहचान कर उसके लिए संघर्ष करने लगी है। चेतना जाग्रत होने से वह समाज तथा परिवार में अपने दोयम दर्जे को नकारने लगी है। आज शहर के साथ-साथ ग्रामीण क्षेत्र में भी शिक्षा के स्तर में बढ़ोतरी हुई है लेकिन लड़कियों को शिक्षा प्राप्ति करने के लिए अभी भी बहुत सारी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

पढ़ने की इच्छा होते हुए भी कभी गरीबी तो कभी पारम्परिक मानसिकता तथा लिंग भेद की नीति के चलते शिक्षा पाने के लिए स्त्री को संघर्ष करना पड़ रहा है।

विवाह एक संस्था भी है और एक संबंध भी। संस्था इस रूप में कि हमारे समाज का सामाजिक ढांचा इस पर खड़ा होता है। लेकिन यह एक संबंध भी है जो दो इंसानों के मध्य बनता है। मौजूदा विवाह संस्था स्त्री के लिए संबंध से अधिक बंधन है, क्योंकि संबंध में समानता का भावनिहित होता है। विवाह संस्था में पुरूष की बजाय स्त्री को कम अहमियत दी जाती है।

इस वक्त विवाह संस्था तथा उससे निर्मित संबंध संक्रमण माल से गुजार रहे है क्योंकि पूरा समाज बदल रहा है। प्राचीन मूल्य टूट रहे हैं और नए निर्मित नहीं हो पा रहे हैं। इसमें पुरूष की मानसिकता में अधिक बदलाव नहीं आया। किन्तु स्त्री की दृष्टि, खोज, उम्मीदें आगे तक जा चुकी है। यही कारण है कि मौजूदा प्रचलित विवाह संस्था को चुनौती मिल रही है। कुछ लोग अंतरजातिय विवाह कर रहे हैं तो कुछ बिना विवाह किये हुए सहजीवन जी रहे हैं, समलैंगिक संबंधों को विवाह संस्था का विकल्प माने पर भी जोर है परन्तु जरूरत विवाह संस्था से भागने या तोड़ने की बजाय उसमें दूसरे साथी को अपनी बात कहने देने का अधिकार प्राप्त हो। इस समय महिला की सुरक्षा का दायित्व पुरूष पर आ गया। इस कारण महिलाओं को पुरूष समाज में अबला, रमणी तथा भोग्या समझा जाने लगा। इसके साथ-साथ समाज में पुरुषप्रधान व्यवस्था का रूप लेने से बदलने

लगा और समाज भी पुरुषप्रधान बनने लगा। इस पुरुषप्रधान व्यवस्था ने महिलाओं को निजी व सामाजिक स्तर पर पैर की जूती की उपाधि तक दे डाली। महिलओं पर सामाजिक स्तर पर दो प्रकार से अत्याचार होते थे एक तो मुस्लिम शासकों के द्वारा दूसरे उनके परिवार के पुरूषों के द्वारा अर्थात् पुरुषप्रधान व्यवस्था के कारण। इस मसाज में व्याप्त अनेक वर्णों, जातियों व समूहों के अतिरक्ति एक और जाति भी है। वह जाति है - महिला या स्त्री की। आज हम 21वीं शताब्दी के दो दशकों को पार कर गए हैं फिर भी महिलओं को अनेक प्रकार के उत्पीड़न व विद्रोह का सामना करना पड़ रहा है। प्राचीन समय से लेकर वर्तमान समय तक महिला का सामाजिक कद पुरुषप्रधान व्यवस्था से निर्धारित होता आ रहा है। महिलाओं को इस पुरुषप्रधान व्यवस्था ने ऐसा कोई भी अधिकार नहीं दिया जो पुरूषों को परम्परा से मिलते आ रहे हैं। हमारे समाज की व्यवस्था ही कुछ इस प्रकार है कि पुरुषप्रधान व्यवस्था ने उसे मजबूती से पकड़ा हुआ है। इस व्यवस्था ने महिला को पुरूष से हीन समझा है। पुरुषप्रधान व्यवस्था की सबसे बड़ी समस्या यह है कि वह महिलाओं को अपने घर भी स्वतंत्र नहीं रहने देती। वहाँ पर भी कुछ भी करने से पहले पिता-भाई की इजाजत की आवश्यकता होती है। लड़कियों को अपने पिता के घर भी पिता के साथ-साथ अपने भाईयों से भी डर कर रहना पड़ता है। कन्या भ्रूण हत्या की जब से खबर समाज में फैलने लगी तो भी समाज के ठेकेदार मुँह पर ताला लगाकर बैठे रहे क्योंकि वे सभी पुरुषप्रधान व्यवस्था के उत्तराधिकारी है। भारत अति गरीब तबके को छोड़कर मध्यम वर्ग, निम्न मध्यम

वर्ग, उच्च मध्यम वर्ग और उच्च वर्ग में उस समय शायद ही कोई ऐसा परिवार हो जिसे बेटे की चाहत नहीं हो गर्भ में लिंग की जाँच नहीं करवाई हो।

भारत का संविधान विश्व का सबसे बड़ा लिखित संविधान है इसमें सभी व्यक्तियों को स्वतंत्रता का अधिकार दिया गया है। किसी भी नागरिक के साथ जाति, धर्म, लिंग आदि के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जा सकता है। किन्तु वास्तव में जमीनी स्तर पर ऐसा नहीं है। पिृसात्तात्मक व्यवस्था में पुरूष प्रधान समाज होता है। इसमें लिंग भेद के आधार पर महिलाओं को कम महत्त्व दिया जाता है और उन पर पुरूषों का अधिकार घोषित है।

भारतीय महिलाओं में जागरूकता व साक्षरता की भी बहुत कमी है। इसी कारण उन्हें अपने अधिकारों की जानकारी नहीं हो पाती। जब अधिकारों का ही पता नहीं होता तो वे कैसी कानूनी कार्यवाही कर सकती हैं। इसके साथ-साथ हमारे समाज में पुरुषप्रधान व्यवस्था व्याप्त है जिसके कारण भारतीय महिलाओं में डर बना रहता है। इसके कारण ही दूर जाती है और उन्हें अपने अधिकारों से वंचित रखा जाता है। प्रभा खेतान प्रेम संबंधों को बहुत ही मानती है इसी कारण वह डॉ. सर्राफ के साथ अपने संबन्धों में बहुत गहरी आस्था रखते हैं। किंतु वह समाज के तानों को बर्दाशत नहीं कर पाती। इसके कारण उनका मानसिक संतुलन ठीक नहीं रहता है। वर्तमान समय में समाज में स्त्री की स्थिति दोयम दर्जे की है। मध्यकाल से ही पुरूष ने नारी की बुद्धि और मानसिकता पर सवालिया निशान लगाए रखा है। पुरूष ने महिला को सौन्दर्य की देवी, वासना शांत करने वाली प्राणी, बुद्धिहीन जीव

के रूप में ही देखा है। इस समय महिलाएं अपनी सामाजिक स्थिति को लेकर बहुत अधिक व्याकुल है क्योंकि अब उन्होंने अपनी सामाजिक प्रताड़ना को लिखकर समाज के सामने रख दिया। कुछ समाज की महिला प्रतिनिधियों ने साहित्य साधना के द्वारा अपने आप समाज में स्थापित करने की कोशिश की है। महिलाएं प्रत्यक्ष रूप से निर्णय इसलिए भी नहीं ले पाती हैं कि इस पुरुषप्रधान व्यवस्था ने उसके अन्दर यह भाव भर दिए हैं कि पुरूष ही उनका भला कर सकता है। इस कारण वे अपने निर्णयों के लिए पुरूषों पर निर्भर रही है। परन्तु वास्तव में पुरूष कभी भी नहीं चाहता की महिलाएं उससे आगे बढ़े। पुरूषों के द्वारा बनाए गए सामाजिक नियमों को तोड़ने का काम करें। पुरूष ने सदैव महिलाओं की प्रगति में बाधा बनने का काम करते है। पुरूष इस बात को अच्छी प्रकार से जानते है कि अगर महिलाएं उनसे आगे आ गई तो उनके वर्चस्व को खतरा उत्पन हो जाएगा। पुरुषप्रधान व्यवस्था के कारण स्त्री को अपने अस्तित्व को बचाने के लिए अनेक संघर्ष करने पड़ रहे है। इन सभी संघर्षों के मध्य धर्म भी साथ-साथ चलता है। स्त्री का धार्मिक रूप से भी पुरुषप्रधान व्यवस्था में शोषण होता है। हमारी संस्कृति में धार्मिक परम्पराएं बिना किसी तर्क के पीढ़ी दर पीढ़ी स्थानांतरित होती रहती है। इन सभी परम्पराओं के पालन के रूप में स्त्री का बहुत अधिक शोषण होता है। धर्म के नाम पर भारतीय समाज में जितना शोषण स्त्री का होता है पुरूष का उसके मुकाबले एक प्रतिशत भी नहीं होता। घर की चौखट के बाहर ही रंग-बिरंगी दुनिया पुरूष की और घर के अन्दर की चौखट का संसार स्त्री

के हिस्से आता है। संसार को आगे बढ़ाने के लिए पति और पत्नी का महत्त्व एक समान है। दोनों के मिलन से संसार आगे बढ़ता है। भारतीय संस्कृति में पति के लिए पत्नी और पत्नी के लिए पति देवता समान माने गए हैं। परन्तु बदलते परिवेश में हमारे संस्कृतिक मूल्यों का ह्रास हो रहा है। समाज में अब स्त्री का स्थान बराबरी का नहीं है क्योंकि समाज पुरूष प्रधान हो गया है। इसलिए पुरूष ने महिलाओं पर अपना अधिकार समझ लिया। यह अधिकार या हक पुरूष और भी प्रबल तरीके से समझने लगता है तब स्त्री उसकी पत्नी बन जाती है। पुरूष पत्नी को एक गुलाब की तरह देखता है। पुरूष कभी भी नहीं चाहता कि उसकी पत्नी उसके सामने किसी भी प्रकार की स्वतंत्रता की बात करें।

सृष्टि के आदिम युग में मनुष्य ने जब नेत्रोंमीलन किया होगा, तो बाह्य प्राकृतिक परिवेश के सम्पर्क में आने पर उसके मन में अनेक प्रतिक्रियाएँ एवं संवेदनाएँ जागृत हुई होंगी। अनेक अस्पष्ट तथा सामान्य अर्थ में निरर्थक ध्वनियों के माध्यम से उसने (मानव) अपनी प्रतिक्रियाओं को व्यक्त करने का प्रयास किया होगा। उसको भाषा नहीं कहा जा सकता। समाज संवेदनाओं और भावों को व्यक्त करने के लिए आदिम मानव ने जिन साधनों को अपनाया होगा, वे सभी साधन स्थूल रूप में भाषा कहे जा सकते हैं।

भाव शब्द के मूल में 'भू' धातु हैं जिसका अर्थ है - होना।' 'संवेदना' शब्द की 'सम्' पूर्वक 'विद्' धातु से व्युत्पन्न है। अतः अपनी भावना या संवेदना को व्यक्त

करने की क्षमता रखने वाले को ही 'व्यक्ति' कहा जाएगा। मानवेतर प्राणी भी अपनी संवेदनाओं को किसी भी प्रकार ध्वनियों के द्वारा प्रकट करते हैं, किन्तु सीमित तथा अविकसित होने से इसमें कोई उल्लेखनीय उन्नति नहीं होती। यही कारण है कि पशु-पक्षी आदिम युग में जैसा बोलते थे, आज भी वैसे ही बोलते है। इसके विपरीत मनुष्य की अभिव्यक्ति में चिन्तन, मनन और कल्पना के कारण निरन्तर विकास होता रहता है। अतः चिंतन, सृजनात्मकता तथा कलात्मकता के कारण मनुष्य अभिव्यक्ति विशिष्ट होती है और मानवेतर प्राणियों की तुलना में उदात्त भी होती है। मानवेतर प्राणियों की भाषा तात्कालिक, सपाट और अभिध्यात्मक होती है, परन्तु मनुष्य की भाषा अभिधात्मकता के साथ-साथ लक्षणा व्यंजना से सम्पन्न बिम्बों, प्रतीकों एवं अलंकारों से समृद्ध होकर विचारों और भावों की विशेष संवाहिका हो जाती है।

लेखिकाओं ने अपनी आत्मकथाओं में अपने भावों की अभिव्यक्ति करने के लिए साहित्यिक भाषा की अपेक्षा क्षेत्रीय भाषा की बहुलता का प्रयोग किया है, जिस कारण उनके जीवन की सम्पूर्ण स्थितियाँ जीवन्त हो उठती है। आत्मकथा को छोड़कर साहित्य की किसी भी विधा में लेखक अपनी इच्छा से पात्रों के साथ-साथ भाषा को भी गढ़ सकता है, लेकिन आत्मकथा विधा में आत्मकथाकार की क्षेत्रीय भाषा अनायास ही प्रस्फुटित हो उठती है।

लेखिकाओं को परिवार समाज तथा साहित्य जगत् में जो कटु अनुभव हुए उनका, खुलासा उन्होंने अपनी आत्मकथाओं में बड़ी सूझ-बूझ से अधिकांशतः शिल्प भाषा का प्रयोग किया है। शिल्प का अर्थ अभिव्यक्ति है। लेखिका अपनी बात को दूसरों तक पहुंचाने मं कितनी सक्षम सिद्ध होती है। जिससे किसी दूसरे की भावना को ठेस न पहुंचे और अपनी बात की दूसरों तक पहुंच पाए। लेखिकाओं ने अपनी आत्मकथा में मर्यादा और शालीनता बनाये रखने के लिए शिल्प भाषा का प्रयोग किया है। कृष्णा अग्निहोत्री जी ने अपने परिवार की मर्यादा का ख्याल रखते हुए बचपन में रिश्तेदारों द्वारा किये गये यौन शोषण को अपनी भाषा में उजागर किया है।

अपनी आत्मकथाओं में लेखिकाओं ने ऐसे जीवन्त बिम्बों का प्रयोग हुआ है। जिससे समस्त घटना को पाठक अपने आस पास घटित होते हुए को अनुभव करता है। रमणिका गुप्ता ने अपने ट्रेड यूनियन के जीवन में कई बार जीवन मृत्यु का खेल खेला। वह 'कूजूकूच' के दौरान अपनी संघर्ष गाथा को आत्मकथा में खूबसूरत बिम्बों के माध्यम से प्रस्तुत करती हैं| पंजाबी लेखिका अजीत कौर की पुत्री कैंडी की मृत्यु का बिम्ब चित्र पाठकों ने हृदय की द्रवीभूत कर देता है | लेखिकाओं ने अपनी आत्मकथाओं में अपने भावों मन की सुप्त भावनाओं, संघर्षों, भावावेगों आदि का प्रतीकों के माध्यम से चित्रण किया है। लेखिकाओं ने प्रतीक का प्रयोग प्रकृति के मानवीकरण के रूप में रूपक तथा उपमा के रूप में, चरित्र भाव तथा विचार विशेष के प्रतिनिधि के रूप में किया है।